**कुसुम अंकमा राव**

**बनाम**

**आंध्र प्रदेश राज्य**

**(आपराधिक अपील संख्या** 185/2005)

7 **जुलाई**, 2008

**[डॉ. अरिजीत पासायत और पी. सथाशिवम, जेजे.]**

दंड संहिता, 1860: धारा 302 आखिरी बार देखा गया सिद्धांत-आरोपी और मृतक की अवैध अंतरंगता थी-आरोपी को आखिरी बार उनके साथ देखा गया था-मृतक का शव अगले दिन मिला-अभियुक्त ने ग्राम प्रशासन अधिकारी के समक्ष न्यायिकेत्तर स्वीकारोक्ति दी-परिस्थितिजन्य साक्ष्य अभियुक्त की दोषिता की ओर इशारा करते हैं-नीचे के न्यायालयों द्वारा आदेशित दोषसिद्धि में कोई दुर्बलता नहीं।

साक्ष्य अधिनियम, 1872: अतिरिक्त न्यायिक - स्वीकारोक्ति का प्रमाणिक मूल्य।

अभियोजन का मामला यह था कि अपीलार्थी-अभियुक्त की मृतक के साथ अवैध घनिष्ठता थी। दुर्भाग्यपूर्ण दिन पर,आरोपी मृतक के बेटे पीडब्ल्यू-1 से मिला और उसे कहा कि वह शराब की बोतल और एक बीड़ी का पैकेट लाए। पीडब्लू-1 उक्त वस्तुओं को लेकर आया। इसके बाद आरोपी ने मृतक का स्थान पूछा। पीडब्लू-1 आरोपी के साथ मृतक से मिलने चला

गया। मृतक ने पीडब्लू-1 और आरोपी से मुलाकात की और वे खेतों की ओर चले गए। तब आरोपी ने पी.डब्ल्यू.-1 ने कहा कि उनका अनुसरण न करें और वहीं रुकें। पीडब्लू-1 कुछ समय तक उनका इंतजार किया और फिर उस होटल में लौट आया जहाँ वह काम कर रहा था । अगली सुबह उसे लगा कि उसकी माँ घर नहीं लौटी है। इसी बीच में, उन्होंने लोगों को यह कहते हुए सुना कि खेत में एक शव मिला है। पीडब्लू-1 और 2 ने मृतक का शव देखा।

निचली न्यायालय ने अभियुक्त को धारा 302 आईपीसी के तहत दोषी ठहराया। उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए अपील को खारिज कर दिया कि पीडब्लू 1 और 2 की साक्ष्य का यह प्रभाव मानते हुये कि अभियुक्त और मृतक को आखिरी बार एक साथ देखा गया था और ग्राम प्रशासनिक अधिकारी के समक्ष की गयी अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति और साक्ष्य ने स्पष्ट रूप से अभियुक्त के अपराध दोषिता को स्थापित किया। इसलिए वर्तमान अपील पेश हुई।

याचिका खारिज करते हुए न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:

1. जहाँ कोई मामला पूरी तरह से परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित होता है, वहाँ अपराध का अनुमान केवल तभी उचित ठहराया जा सकता है, जब सभी दोषपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों को अभियुक्त की

निर्दोषता के साथ या किसी अन्य व्यक्ति की दोषिता के साथ असंगत पाया जाता है। ऐसे परिस्थितिया जिनसे अभियुक्त के अपराध के बारे में एक अनुमान लगाया जाता है, को युक्तियुक्त संदेह से परे साबित करना होगा और उन परिस्थितियों से अनुमानित किए जाने वाले प्रमुख तथ्य के साथ निकटता से जुड़ा होना दिखाया जाना चाहिए। [पैरा 5] [96-डी, ई एंड एफ]

हुकुम सिंह बनाम राजस्थान राज्य **ए.आई.आर.**(1977) **एससी** 1063; इराडू और अन्य बनाम हैदराबाद राज्य **ए.आई.आर.**(1956) **एससी** 316; इराभद्रप्पा बनाम कर्नाटक राज्य **ए.आई.आर.** (1983) **एससी** 446; यू.पी. राज्य बनाम सुखबासी और अन्य। **ए.आई.आर.**(1985) **एससी** 1224; बलविंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य **ए.आई.आर.** (1987) **एससी** 350; अशोक कुमार चटर्जी बनाम एम.पी.ए. राज्य **ए.आई.आर. राज्य** (1989) **एस.सी.** 1890; भगत राम बनाम पंजाब राज्य **ए.आई.आर.**(1954) **एससी** 621; सी. चेंगा रेड्डी और अन्य बनाम **ए.पी. राज्य** (1996) 10 **एस.सी.सी.** 193 ; पदला वीरा रेड्डी बनाम ए.पी. राज्य और अन्य। **ए.आई.आर.** (1990) **एससी** 79; यू.पी. राज्य बनाम अशोक कुमार श्रीवास्तव (1992) सीआरएल.एलजे 1104-आधारित किया गया।

हरियाणा राज्य बनाम वेद प्रकाश **ए.आई.आर**. (1994) **एस.सी**. 468; कैलाश पोटलिया बनाम आंध्र प्रदेश राज्य **ए.आई.आर**. (1996) **एससी** 66 - संदर्भित किया गया।

2.1. स्वीकारोक्ति को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है अर्थात न्यायिक और अतिरिक्त न्यायिक। न्यायिक स्वीकारोक्ति वे हैं, जो न्यायिक कार्यवाहियों के दौरान मजिस्ट्रेट या न्यायालय के समक्ष किए जाते हैं। अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति वे हैं, जो पार्टी द्वारा के मजिस्ट्रेट या न्यायालय के समक्ष अलावा कहीं और किए गए हैं। अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति आम तौर पर वे होते हैं जो किसी पक्ष द्वारा किसी निजी व्यक्ति को या उसके समक्ष किए जाते हैं, जिसमें एक न्यायिक अधिकारी भी अपनी निजी क्षमता में शामिल होता है। इसमें एक मजिस्ट्रेट भी शामिल है, जिसे विशेष रूप से धारा 164 सीआरपीसी के तहत स्वीकारोक्ति दर्ज करने का अधिकार नहीं है या एक मजिस्ट्रेट जो इसके लिए सशक्त है लेकिन उस स्टेज पर स्वीकारोक्ति प्राप्त कर रहा है, जब धारा 164 लागू नहीं होता है। जैसा कि धारा अधिनियमित करती है, अभियुक्त व्यक्ति द्वारा की गई संस्वीकृति दाण्डिक कार्यवाही में विसंगत होती है, यदि उसके किये जाने के बारे में न्यायालय को प्रतीत होता है कि अभियुक्त व्यक्ति के विरूद्ध आरोप के बारे में वह ऐसी उत्पे्ररणा, धमकी या वचन द्वारा कराई गई है, जो प्राधिकारवान- व्यक्ति की ओर से दिया गया है और जो न्यायालय की

राय में इसके लिए प्रयास हो कि वह अभियुक्त व्यक्ति को यह अनुमान करने के लिए उसे युक्तियुक्त प्रतीत होने वाले आधार देती है कि उसके करने से वह अपने विरूद्ध कार्यवाहियों के बारे में लोकिक रूप का कोई फायेदा उठायेगा या अपने लोकिक रूप की किसी बुराई का परिवर्तन कर देगा। संस्वीकृति स्वेच्छिक होगी, यदि यह अभियुक्त द्वारा दिमाग की उपयुक्त स्थिति में की गई है और यदि यह किसी प्रयोजन, धमकी या वाद, जो कि उसके विरूद्ध आरोप से संदर्भित हो, के कारण नहीं की गई हो। कोई संस्वीकृति स्वेच्छिक है या नहीं, यह प्रत्येक मामलों के तथ्यों व परिस्थितियों पर निर्भर करे। धारा 24 के प्रकाश में निर्णित। (पैरा 17) (101-ए, बी, सी, डी, एफ, जी, ओ, एच)

2.2. यदि संस्वीकृति करने के आसपास के तथ्य तथा परिस्थितिया, संस्वीकृति के करने तथा स्वेच्छिक होने पर संदेह उत्पन्न करती है तो न्यायालय संस्वीकृति पर कार्यवाही करने से इंकार कर सकता है, यदपि वह साक्ष्य में गृाहय हो। संस्वीकृति स्वेच्छिक है या नहीं, यह हमेशा एक तथ्य का प्रश्न होता है? मामलें के सभी कारण तथा परिस्थितियों, जिनमें परावर्तन हेतु दिये गये महत्वपूर्ण कारक, अभियुक्त को धमकी या वादे से होने वाली भावना को सम्मलित है, पर यह तय करने से पहले विचार किया जाना चाहिए कि न्यायालय इस पर संतुष्ट है कि उसकी राय में ऐसी धमकी, प्रलोभन और वादे से कारित हुआ प्रभाव, यदि कोई हो, पूरी तरह

हटाया जा चुका है। एक स्वतंत्र और स्वैच्छिक स्वीकारोक्ति उच्चतम श्रेय के योग्य है, क्योंकि यह माना जाता है कि यह अपराध की उच्चतम भावना से प्रवाहित होती है। यह कल्पना नहीं की जानी चाहिए कि एक आदमी को अपराधबोध की एक स्वतंत्र और स्वैच्छिक स्वीकारोक्ति करने के लिए प्रेरित किया जाएगा, जो मानव स्वभाव के भावनाओं और सिद्धांतों के विपरीत है, यदि स्वीकार किए गए तथ्य सत्य नहीं थे। यदि स्पष्ट रूप से साबित हो जाता है, तो जानबूझकर और स्वैच्छिक रूप से की गयी स्वीकारोक्ति कानून में सबसे प्रभावी सबूतों में से हैं। हर प्रलोभन, धमकी या वादा स्वीकारोक्ति को दूषित नहीं करता है। इसलिए इस नियम का उद्देश्य केवल उन स्वीकारोक्ति को बाहर करना है जो कि साक्ष्यिक रूप से अविश्वसनीय है। प्रलोभन, धमकी या वादा ऐसा होना चाहिए जिसकी गणना एक असत्य स्वीकारोक्ति की ओर ले जाने के लिए की जाती है। उपरोक्त विश्लेषण पर न्यायालय को प्रलोभन, वादा आदि की अनुपस्थिति या उपस्थिति, या इसकी पर्याप्तता और कैसे या किस माप में इसने आरोपी के दिमाग पर काम किया, का निर्धारण करना है। यदि न्यायालय की राय में प्रलोभन, वादा या धमकी अभियुक्त व्यक्ति को ऐसे आधार देने के लिए पर्याप्त है जो उसे यह अनुमान लगाने के लिए उचित प्रतीत होंगे कि ऐसा करने से वह कोई लाभ प्राप्त करेगा या किसी बुराई से बच जाएगा, तो यह स्वीकारोक्ति को हटाने के लिए पर्याप्त है।धारा के अंतिम भाग में शब्द "उसे दिखाई देते

हैं" अभियुक्त की मानसिकता को संदर्भित करता है। [**पैरा** 17] [102-**ए**, **बी**, **सी**, **डी**, **ई**; 103-**ए**, **बी**, **सी और डी**]

वुड्रॉफ्स एविडेंस, 9 वीं संस्करण।, **पी- 284** – संदर्भित किया गया।

2.3. एक अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति, यदि स्वैच्छिक और सत्य है और मन की एक उपयुक्त स्थिति में की गई है, तो द्वारा न्यायालय द्वारा इस पर भरोसा किया जा सकता है। स्वीकारोक्ति को किसी भी अन्य तथ्य की तरह साबित करना होगा। स्वीकारोक्ति के रूप में साक्ष्य का मूल्य, किसी भी अन्य साक्ष्य की तरह, उस गवाह की सत्यता पर निर्भर करता है जिसे यह दिया गया है। यह किसी भी न्यायालय के लिए इस धारणा के साथ शुरू करने के लिए खुला नहीं है कि अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति एक कमजोर प्रकार का सबूत है। यह परिस्थितियों की प्रकृति पर निर्भर करेगा, उस समय जब स्वीकारोक्ति की गई थी और गवाहों की विश्वसनीयता पर निर्भर करेगा जो ऐसी स्वीकारोक्ति की बात करते हैं। इस तरह के कबूलनामे पर भरोसा किया जा सकता है और उस पर दोषसिद्धि की स्थापना की जा सकती है यदि स्वीकारोक्ति के बारे में साक्ष्य उन गवाहों के मुंह से आता है जो निष्पक्ष प्रतीत होते हैं, यहां तक कि दूर से भी अभियुक्त के प्रति शत्रुतापूर्ण नहीं हैं, और जिनके संबंध में कुछ भी नहीं लाया जाता है, जो यह संकेत दे सकता है कि उसका उद्देश्य अभियुक्त के प्रति एक असत्य बयान देने का हो सकता है, गवाह द्वारा बोले गए शब्द

स्पष्ट और स्पष्ट हैं और स्पष्ट रूप से यह बताता है कि अभियुक्त अपराध का दोषी है और गवाह द्वारा कुछ भी नहीं छोड़ा गया है, जो उसके खिलाफ जा सकता है। यदि साक्षी साक्ष्य प्रस्तुत करने के दौरान विश्वसनीयता की कठोर परीक्षा उत्तीर्ण कर लेता है तो अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ती दोषसिद्धी का आधार हो सकती है। [**पैरा** 18] [103-**डी**, **ई**, **एफ**, **जी**, **एच**; 104-**ए और बी**]

राजस्थान राज्य बनाम राजा राम (2003) 8 **एससीसी** 180 **पर आधारित किया गया।**

3. **यदि तथ्यात्मक परिदृश्य पर विचार किया जाए तो यह देखा जाता है कि अभियोजन पक्ष ने स्पष्ट रूप से अभियुक्त के अपराध को स्थापित किया। न्यायालय के मुकदमे के फैसले में जिसकी उच्च न्यायालय ने पुष्टि की,कोई कमजोरी नहीं है।** [**पैरा** 19] [104-**बी और सी**]

आपराधिक अपील क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील संख्या 185/2005।

आन्ध्र पद्रेश उच्च न्यायालय के दाण्डिक अपील संख्या 867/2002 में हेदराबाद में पारित अंतिम निर्णय और आदेश दिनांकित 2.9.2004 से उत्पन्न।

सुधीर कुलश्रेष्ठ, अपीलार्थी के लिए।

देबोजीत बोरकाकाटी और डी. भारती रेड्डी, प्रतिवादी के लिए।

डॉ. अरिजीत पासायत, न्यायाधिपति 1. इस अपील में चुनौती आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की एक डिवीजन बेंच के फैसले को दी गई है, जिसमें अपीलकर्ताओं को भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302 (संक्षेप में `आईपीसी) के तहत एक गोट्टापु की हत्या के लिए दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया गया था। 22.2.2001 को तौलिए से गला घोंटकर आदिलक्ष्मी (बाद में 'मृतका' के रूप में संदर्भित) की हत्या कर दी गई। विद्वान VI अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश (फास्ट ट्रैक न्यायालय), मछलीपट्टनम ने आरोपी को दोषी पाया और दोषी ठहराया और उसे आजीवन कारावास और जुर्माने की सजा सुनाई।

2. मुकदमे के दौरान अभियोजन का मामला इस प्रकार हैः

मुकदमे के दौरान सामने आया अभियोजन मामला इस प्रकार है: कुसुमा अंकमा राव (बाद में 'अभियुक्त' के रूप में संदर्भित) गुडीवाड़ा शहर के पेडावीधि का निवासी था।वह एक फल विक्रेता था.शंकर राव (पीडब्लू-1) और राम स्वामी (पीडब्लू-2) क्रमशः मृतक के बेटे और पति हैं। मृतक अपने परिवार के साथ गुडीवाड़ा में पदमाता विधि में एम. सिम्हाचलम (पीडब्लू-3) के घर में रहता था। आरोपी की मृतिका से अवैध घनिष्ठता थी। 22.2.2001 को शाम लगभग 6.30 बजे, आरोपी पीडब्लू-1 (मृतक का

बेटा) से मिला और उससे शराब की एक चौथाई बोतल और एक बीड़ी पैकेट लाने के लिए कहा और इस उद्देश्य के लिए 50/- रुपये का भुगतान किया। तदनुसार, पीडब्लू-1 उक्त वस्तुएं लेकर आया। इसके बाद आरोपी ने मृतक का पता पूछा। पीडब्लू-1 आरोपी को गोपालकृष्ण (एसी) थिएटर में ले गया, जहां मृतक उस दिन एक मजदूर के रूप में काम कर रहा था। थिएटर के रास्ते में, उन्होंने मृतक और कुछ अन्य लोगों को विपरीत दिशा में आते हुए पाया। उस समय, आरोपी ने मृतक से बात की; और आरोपी, मृतक और पीडब्लू-1 एलुरु की ओर जाने वाली बाईपास सड़क पर गए और उसके बाद वे एन. नरसिम्हा राव के काले चने के खेत में गए। उस समय अभियुक्त ने पीडब्लू-1 को उनका पीछा न करने और वहाँ रुकने के लिए कहा। तदनुसार, पीडब्लू-1 ने लगभग आधे घंटे तक वहां प्रतीक्षा की और मृतक और अभियुक्त वापस नहीं आये, तो वह उस होटल में लौट आया जहाँ वह काम कर रहा था।इसके बाद वह देर रात घर चला गया। सुबह जब उसे पता चला कि उसकी माँ घर नहीं लौटी है, तो उसने अपने पिता को उपरोक्त तथ्य बताए। इस बीच, उन्होंने लोगों को यह कहते हुए सुना कि एन नरसिम्हा राव के खेत में एक शव था। फिर पीडब्लू 1 और 2 वहाँ गए और मृतक के शव को देखा और पीडब्लू-2 ने पीडब्लू-1 को पुलिस को शिकायत देने के लिए कहा। तदनुसार, पीडब्लू-1 नगर पुलिस गुडिवाडा के पास गया,और एक्स. पी.-1 रिपोर्ट दी। उक्त रिपोर्ट के आधार पर पी.

डब्ल्यू.-11 द्वारा एफ. आई. आर. दर्ज की गई थी। जाँच अधिकारी (पीडब्लू-12) एफ. आई. आर. की प्राप्ति पर अपराध स्थल पर गया और अपराध स्थल का पंचनामा किया और उसके बाद आयोजित किया गया और मृतक के शव के बारे में पूछताछ की। उसने गवाहों की जाँच भी की और तौलिया और अन्य सामग्री जब्त कर ली। इस बीच, आरोपी ने पीडब्लू-6 ग्राम प्रशासनिक अधिकारी के समक्ष एक अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति की कि उसने मृत व्यक्ति की हत्या गला घोंटकर द्वारा की थी। इसके तुरंत बाद पीडब्लू-6 ने अभियुक्त का बयान ग्राम सेवक पी. डब्ल्यू.-8 द्वारा विधिवत सत्यापित दर्ज किया। वह आरोपी को अपने और रिपोर्ट साथ पुलिस स्टेशन ले गया। पुलिस के सी. आई. ने ग्राम प्रशासनिक अधिकारी की जांच की। जाँच पूरा होने के बाद, विद्वान अतिरिक्त न्यायिक प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट गुडिवाडा के समक्ष आरोप पत्र दायर किया गया, जिन्होंने 2001 के पी. आर. सी. No.30 के रूप में पंजीकृत किया। चूँकि आई. पी. सी. की धारा 302 के तहत दंडनीय अपराध सत्र न्यायालय द्वारा सक्रिय रूप से विचारणीय है, उन्होंने इसे सत्र न्यायालय, मछलीपट्टनम को सौंप दिया, जिसने 2001 के एस सी नं. 211 के रूप में मामला दर्ज किया। इसके बाद, मामला विद्वान छठे अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश मछलीपट्टनम को कानून के अनुसार मुकदमे और निपटारे के लिए सौंप दिया गया।

अपने संस्करण को स्थापित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने 12 गवाहों की जांच की और प्रदर्श पी-1 से पी-14 दस्तावेज़ के रूप में चिह्नित किया और एम.ओ.एस. 1 से 19 तक को भी चिन्हित किया गया। ट्रायल न्यायालय ने रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों पर विचार करने के बाद आरोपी को दोषी पाया और उसे उपरोक्त के अनुसार सजा सुनाई। सजा को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी। उच्च न्यायालय के समक्ष रुख यह था कि अभियोजन पक्ष का मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित था और उजागर की गई परिस्थितियाँ अभियुक्त के अपराध को स्थापित नहीं करती हैं। दूसरी ओर, राज्य ने पीडब्लू 1 और 2 के साक्ष्य और ग्राम प्रशासनिक अधिकारी (पीडब्लू-6) के समक्ष किए गए अतिरिक्त न्यायिक बयान का हवाला दिया, जिसमें कहा गया था कि आरोपी और मृतक को आखिरी बार एक साथ देखा गया था, और साक्ष्य ने स्पष्ट रूप से अपराध स्थापित किया था। उच्च न्यायालय ने राज्य के रुख को स्वीकार किया और अभियुक्त की अपील खारिज कर दी।

3. अपील के समर्थन में, अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि अंतिम बार देखी गई अवधारणा वर्तमान मामले पर लागू नहीं है। तथाकथित न्यायेतर स्वीकारोक्ति एक अजनबी के सामने थी। इसका कोई कारण नहीं है कि आरोपी किसी अजनबी के सामने कबूलनामा क्यों करेगा। हरियाणा राज्य बनाम वेद प्रकाश (एआईआर 1994 एससी 468) और

कैलाश पोटलिया बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (एआईआर 1996 एससी 66) न्यायालय के फैसले पर तर्को के समर्थन में जोर दिया गया।

4. दूसरी ओर प्रत्यर्थी-राज्य के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि तीन गवाहों यानी पीडब्लू 1 (मृतक का पुत्र) पीडब्लू 4 और 5 ने मृतक और आरोपी को एक साथ जाते देखा था और उसके बाद शव बरामद किया गया था। ग्राम प्रशासनिक अधिकारी कोई अजनबी नहीं था, बल्कि वह गाँव का प्रभारी था और उस अर्थ में एक प्राधिकारी व्यक्ति था।

5. इस न्यायालय द्वारा लगातार यह निर्धारित किया गया है कि जहां कोई मामला पूरी तरह से परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है, अपराध का अनुमान तभी उचित ठहराया जा सकता है जब सभी आपत्तिजनक तथ्य और परिस्थितियां आरोपी की बेगुनाही या अपराध के साथ असंगत पाई जाएं। किसी अन्य व्यक्ति का. (देखें हुकम सिंह बनाम राजस्थान राज्य एआईआर (1977 एससी 1063); एराडु और अन्य बनाम हैदराबाद राज्य (एआईआर 1956 एससी 316); ईराभद्रप्पा बनाम कर्नाटक राज्य (एआईआर 1983 एससी 446); यूपी राज्य बनाम सुखबासी और अन्य (एआईआर 1985 एससी 1224); बलविंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य (एआईआर 1987 एससी 350); अशोक कुमार चटर्जी बनाम एमपी राज्य (एआईआर 1989 एससी 1890)। वे परिस्थितियाँ जिनसे अपराध का अनुमान लगाया जाता है आरोपी को उचित संदेह से परे साबित करना होगा और उन परिस्थितियों

से निकाले जाने वाले संदर्भ को मुख्य तथ्य के साथ निकटता से जुड़ा होना दिखाया जाना चाहिए। भगत राम बनाम पंजाब राज्य (एआईआर 1954 एससी 621) में, यह निर्धारित किया गया है कि जहां मामला परिस्थितियों से निकाले गए निष्कर्ष पर निर्भर करता है, परिस्थितियों का संचयी प्रभाव ऐसा होना चाहिए जो आरोपी की बेगुनाही को नकारात्मक कर दे और अपराधों को किसी भी उचित संदेह से परे कर दे।

6. हम इस न्यायालय के अन्य मामले के निर्णय का भी संदर्भ दे सकते हैं। सी. चेंगा रेड्डी बनाम एपी राज्य (1996) 10 एससीसी 193, जिसमें यह इस प्रकार पाया गया है:

> "परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर एक मामले में, स्थापित कानून यह है कि जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाता है उन्हें पूरी तरह से साबित किया जाना चाहिए और ऐसी परिस्थितियां प्रकृति में निर्णायक होना चाहिए। इसके अलावा, सभी परिस्थितियाँ पूर्ण होनी चाहिए और साक्ष्य की श्रृंखला में कोई अंतर नहीं छोड़ा जाना चाहिए। इसके अलावा सिद्ध परिस्थितियाँ केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होनी चाहिए और उसकी बेगुनाही के साथ पूरी तरह से असंगत होनी चाहिए ...."।

7. पडाला वीरा रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य ( एआईआर 1990 एससी 79), में यह निर्धारित किया गया था कि जब कोई मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर टिका होता है, तो ऐसे साक्ष्य को निम्नलिखित परीक्षणों को पूरा करना होगा:

> "(1) जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें सुसंगत और दृढ़ता से स्थापित किया जाना चाहिए;
>
> (2) वे परिस्थितियाँ एक निश्चित प्रवृत्ति की होनी चाहिए जो त्रुटिहीन रूप से अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करती हों;
>
> (3) संचयी रूप से ली गई परिस्थितियों को इतनी पूर्ण श्रृंखला बनानी चाहिए कि इस निष्कर्ष से कोई बच न सके कि सभी मानवीय संभावनाओं के भीतर अपराध आरोपी द्वारा किया गया था और किसी और ने नहीं; और
>
> (4) दोषसिद्धि को बनाए रखने के लिए परिस्थितिजन्य साक्ष्य पूर्ण होने चाहिए और अभियुक्त के अपराध के अलावा किसी भी अन्य परिकल्पना की व्याख्या करने में असमर्थ होने चाहिए और ऐसे साक्ष्य न केवल अभियुक्त के अपराध

के अनुरूप होने चाहिए बल्कि उसकी निर्दोिषिता के साथ असंगत होने चाहिए।"

8. यूपी राज्य बनाम अशोक कुमार श्रीवास्तव, (1992 सीआरएल.एलजे. 1104) में, यह तय किया गया था कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मूल्यांकन में बहुत सावधानी बरतनी चाहिए और यदि जिस साक्ष्य पर भरोसा किया गया है वह दो निष्कर्षों के लिए उचित रूप से सक्षम है, एक अभियुक्त का पक्ष स्वीकार किया जाना चाहिए. यह भी बताया गया कि जिन परिस्थितियों पर भरोसा किया गया है वे पूरी तरह से स्थापित होनी चाहिए और स्थापित सभी तथ्यों का संचयी प्रभाव केवल अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होना चाहिए।

9. सर अल्फ्रेड विल्स ने अपनी प्रशंसनीय पुस्तक "विल्स सर्कमस्टैंटियल एविडेंस" (अध्याय VI) में परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में विशेष रूप से पालन किए जाने वाले निम्नलिखित नियम बताए हैं: (1) किसी भी कानूनी अनुमान के आधार के रूप में तथ्यात्मक जांच से संबंधित कथित तथ्य स्पष्ट रूप से और उचित संदेह से परे साबित होने चाहिए ; (2) सबूत का बोझ हमेशा उस पक्ष पर होता है जो किसी तथ्य के अस्तित्व का दावा करता है, जो कानूनी जवाबदेही का अनुमान लगाता है; (3) सभी मामलों में, चाहे प्रत्यक्ष साक्ष्य हो या परिस्थितिजन्य साक्ष्य, सर्वोत्तम साक्ष्य प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिसे मामले की प्रकृति स्वीकार

करती है; (4) अपराध के अनुमान को उचित ठहराने के लिए, दोषी तथ्यों को अभियुक्त की बेगुनाही के साथ असंगत होना चाहिए और उसके अपराध के अलावा किसी अन्य उचित परिकल्पना पर स्पष्टीकरण देने में असमर्थ होना चाहिए, (5) यदि कोई उचित संदेह हो अभियुक्त के अपराध के आधार पर, वह दोषमुक्त होने का अधिकार रखता है।"

10. इसमें कोई संदेह नहीं है कि दोषसिद्धि केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित हो सकती है, लेकिन इसे 1952 में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित परिस्थितिजन्य साक्ष्य से संबंधित कानून की कसौटी पर परखा जाना चाहिए।

11. हनुमंत गोविंद नरगुंडकर और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (एआईआर 1952 एससी 343), जिसमें यह इस प्रकार पाया गया:

> "यह अच्छी तरह से याद रखना चाहिए कि ऐसे मामलों में जहां साक्ष्य परिस्थितिजन्य प्रकृति का है, जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पहले पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए और इस प्रकार स्थापित सभी तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना से सुसंगत होने चाहिए फिर, परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए और वे ऐसी

होनी चाहिए जो साबित होने के लिए प्रस्तावित परिकल्पना को छोड़कर प्रत्येक परिकल्पना को बाहर कर दें। दूसरे शब्दों में, साक्ष्य की एक श्रृंखला पूर्ण होनी चाहिए ताकि अभियुक्त की बेगुनाही के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़ा जाए और यह ऐसा होना चाहिए जिससे यह पता चले कि सभी मानवीय संभावनाओं के भीतर यह कार्य अभियुक्त द्वारा ही किया गया होगा।"

12. शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (एआईआर 1984 एससी 1622) बाद के फैसले का संदर्भ दिया जा सकता है। उसमें, परिस्थितिजन्य साक्ष्य से निपटने के दौरान, यह माना गया है कि यह साबित करने का दायित्व अभियोजन पक्ष पर था कि श्रृंखला पूरी है और अभियोजन में कमी की कमजोरी को झूठे बचाव या दलील से ठीक नहीं किया जा सकता है। परिस्थितिजन्य साक्ष्यों के आधार पर दोषसिद्धि करने से पहले, इस न्यायालय के शब्दों में पूर्ववर्ती शर्तों को पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए। वे हैं:

(1) जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए। संबंधित परिस्थितियाँ आवश्यक रूप से स्थापित की जानी चाहिए ना कि, की जा सकती है;

(2) इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात, उन्हें किसी अन्य परिकल्पना पर समझाने योग्य नहीं होना चाहिए सिवाय इसके कि अभियुक्त दोषी है;

(3) परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति एवं प्रवृत्ति की होनी चाहिए;

(4) उन्हें सिद्ध की जाने वाली परिकल्पना को छोड़कर हर संभावित परिकल्पना को बाहर कर देना चाहिए; और

(5) साक्ष्यों की एक श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की बेगुनाही के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छूटे और यह दर्शाया जाए कि सभी मानवीय संभावनाओं में कार्य अभियुक्त द्वारा किया गया होगा।

13. इन पहलुओं को राजस्थान राज्य बनाम राजाराम (2003 (8) एससीसी 180), हरियाणा राज्य बनाम जगबीर सिंह और अन्य। (2003 (11) एससीसी 261), में प्रमुखता से दिखाया गया था।

14. जहां तक आखिरी बार देखे गए पहलू का सवाल है तो इस न्यायालय के दो फैसलों पर गौर करना जरूरी है. यूपी राज्य बनाम सतीश [2005 (3) एससीसी 114] में इसे इस प्रकार नोट किया गया था:

"22. आखिरी बार देखा गया सिद्धांत चलन में आता है जहां, उस समय के बीच का समय-अंतराल जब आरोपी और मृतक को आखिरी बार जीवित देखा गया था और जब मृतक मृत पाया गया था,तो इतना कम है कि आरोपी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के होने की संभावना है अपराध का लेखक असंभव हो जाता है। कुछ मामलों में यह सकारात्मक रूप से स्थापित करना मुश्किल होगा कि मृतक को आखिरी बार आरोपी के साथ देखा गया था जब लंबा अंतराल हो और बीच में अन्य व्यक्तियों के आने की संभावना मौजूद हो। किसी अन्य सकारात्मक के अभाव में यह निष्कर्ष निकालने के लिए सबूत हैं कि आरोपी और मृतक को आखिरी बार एक साथ देखा गया था, उन मामलों में अपराध के निष्कर्ष पर आना खतरनाक होगा। इस मामले में सकारात्मक सबूत हैं कि मृतक और आरोपी को पीडब्लू-2 के साक्ष्य के अतिरिक्त, गवाहों पीडब्लू 3 और 5 के द्वारा एक साथ देखा गया था।"

15. रामरेड्डी राजेश खन्ना रेड्डी बनाम स्टेट ऑफ एपी [2006 (10) एससीसी 172] में इसे इस प्रकार नोट किया गया था:

"27. इसके अलावा, आखिरी बार देखा गया सिद्धांत भी चलन में आता है, जहां उस समय के बीच समय का अंतर इतना कम होता है कि जब आरोपी और मृतक को आखिरी बार जीवित देखा गया था और मृतक मृत पाया गया था, इसलिए इसके अलावा किसी अन्य व्यक्ति की संभावना कम है आरोपी का अपराध का रचयिता होना असंभव हो जाता है। ऐसे मामले में भी अदालतों को कुछ पुष्टि की तलाश करनी चाहिए।"

(बोधराज बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य (2002(8) एससीसी 45 भी देखें))"

16. इसी तरह का दृष्टिकोण जसवन्त गिर बनाम पंजाब राज्य [2005(12) एससीसी 438] में भी लिया गया था।

17. स्वकरोक्ति बयान को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है यानी न्यायिक और न्यायेतर। न्यायिक संस्वीकृति वे हैं जो न्यायिक कार्यवाही के दौरान मजिस्ट्रेट या न्यायालय के समक्ष की जाती हैं। न्यायेतर स्वीकारोक्ति वे हैं जो किसी पक्ष द्वारा मजिस्ट्रेट या न्यायालय के समक्ष के अलावा कहीं और किए जाते हैं। न्यायेतर स्वीकारोक्ति आम तौर पर वे होती हैं जो किसी पक्ष द्वारा किसी निजी व्यक्ति को या उसके समक्ष

की जाती हैं, जिसमें निजी क्षमता में एक न्यायिक अधिकारी भी शामिल होता है। इसमें एक मजिस्ट्रेट भी शामिल है जो आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में 'संहिता) की धारा 164 के तहत बयान दर्ज करने के लिए विशेष रूप से सशक्त नहीं है या एक मजिस्ट्रेट इतना सशक्त है लेकिन उस चरण में बयान प्राप्त कर रहा है जब धारा 164 लागू नहीं होती है। जहाँ तक न्यायेतर स्वीकारोक्ति का सवाल है, दो प्रश्न उठते हैं: (i) क्या वे स्वेच्छा से दिए गए थे? और (ii) क्या वे सच हैं? जैसा कि धारा अधिनियमित करती है, अभियुक्त व्यक्ति द्वारा की गई संस्वीकृति दाण्डिक कार्यवाही में विसंगत होती है, यदि उसके किये जाने के बारे में न्यायालय को प्रतीत होता है कि अभियुक्त व्यक्ति के विरूद्ध आरोप के बारे में वह ऐसी उत्पे्ररणा, धमकी या वचन द्वारा कराई गई है, जो प्राधिकारवान- व्यक्ति की ओर से दिया गया है और जो न्यायालय की राय में इसके लिए प्रयाप्त हो कि वह अभियुक्त व्यक्ति को यह अनुमान करने के लिए उसे युक्तियुक्त प्रतीत होने वाले आधार देती है कि उसके करने से वह अपने विरूद्ध कार्यवाहियों के बारे में लोकिक रूप का कोई फायेदा उठायेगा या अपने लोकिक रूप की किसी बुराई का परिवर्तन कर देगा। इसका तात्पर्य यह है कि एक स्वीकारोक्ति स्वैच्छिक होगी यदि यह अभियुक्त द्वारा मानसिक रूप से स्वस्थ स्थिति में किया गया है, और यदि यह किसी प्रलोभन, धमकी या वादे के कारण नहीं होता है जो उसके खिलाफ आरोप का संदर्भ देता है, जो कि

अधिकार में किसी व्यक्ति से आगे बढ़ता है। . यह अनैच्छिक नहीं होगा, यदि प्रलोभन, (ए) आरोपी व्यक्ति के खिलाफ आरोप का संदर्भ नहीं है; या (बी) यह किसी प्राधिकारी व्यक्ति से आगे नहीं बढ़ता है; या (सी) न्यायालय की राय में आरोपी व्यक्ति को ऐसे आधार देना पर्याप्त नहीं है जो उसे यह मानने के लिए उचित लगे कि ऐसा करने से उसे कोई लाभ मिलेगा या संदर्भ में अस्थायी प्रकृति की किसी भी बुराई से बचा जा सकेगा। उसके खिलाफ कार्यवाही के लिए. स्वीकारोक्ति स्वैच्छिक थी या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा, जिसका निर्णय धारा 24 के आलोक में किया जाएगा। कानून स्पष्ट है कि किसी स्वीकारोक्ति का इस्तेमाल किसी आरोपी व्यक्ति के खिलाफ तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि न्यायालय संतुष्ट न हो जाए कि यह स्वैच्छिक था और उस स्तर पर यह प्रश्न ही नहीं उठता कि यह सत्य है या असत्य। यदि स्वीकारोक्ति के आसपास के तथ्य और परिस्थितियाँ स्वीकारोक्ति की सत्यता या स्वैच्छिकता पर संदेह पैदा करती प्रतीत होती हैं, तो न्यायालय स्वीकारोक्ति पर कार्रवाई करने से इनकार कर सकती है, भले ही वह साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य हो। एक महत्वपूर्ण प्रश्न, जिसके संबंध में न्यायालय को संतुष्ट होना होगा, वह यह है कि क्या आरोपी ने कब कबूलनामा किया था? वह एक स्वतंत्र व्यक्ति था या उसकी गतिविधियों को पुलिस द्वारा या तो स्वयं या इस तरह की स्वीकारोक्ति

हासिल करने के उद्देश्य से नियुक्त किसी अन्य एजेंसी के माध्यम से नियंत्रित किया जाता था। यह प्रश्न कि स्वीकारोक्ति स्वैच्छिक है या नहीं, सदैव तथ्य का प्रश्न है। मामले के सभी कारकों और सभी परिस्थितियों, जिनमें विचार के लिए दिए गए समय के महत्वपूर्ण कारक, अभियुक्त को धमकी, प्रलोभन या वादे की भावना मिलने की गुंजाइश शामिल है, पर निर्णय लेने से पहले विचार किया जाना चाहिए कि क्या न्यायालय अपनी राय में संतुष्ट है प्रलोभन, धमकी या वादे के कारण उत्पन्न प्रभाव, यदि कोई हो, पूरी तरह से हटा दिया गया है। एक स्वतंत्र और स्वैच्छिक स्वीकारोक्ति सर्वोच्च श्रेय की पात्र है, क्योंकि यह अपराध की उच्चतम भावना से उत्पन्न माना जाता है। यह कल्पना नहीं की जानी चाहिए कि यदि स्वीकार किए गए तथ्य सत्य नहीं हैं, तो किसी व्यक्ति को अपराध की स्वतंत्र और स्वैच्छिक स्वीकारोक्ति करने के लिए प्रेरित किया जाएगा, जो मानव स्वभाव की भावनाओं और सिद्धांतों के विपरीत है। जानबूझकर और स्वैच्छिक अपराध स्वीकारोक्ति, यदि स्पष्ट रूप से साबित हो, कानून में सबसे प्रभावशाली सबूतों में से एक है। एक अनैच्छिक स्वीकारोक्ति वह है जो इसे करने वाले की स्वतंत्र इच्छा का परिणाम नहीं है। इसलिए जहां व्यक्ति को अपराधी और आरोपी मानने के बाद कई घंटों तक उत्पीड़न और लगातार पूछताछ के परिणामस्वरूप बयान दिया जाता है, ऐसे बयान को अनैच्छिक माना जाना चाहिए। प्रलोभन एक वादे या धमकी का रूप ले

सकता है, और अक्सर प्रलोभन में वादा और धमकी दोनों शामिल होते हैं, यदि प्रकटीकरण किया जाता है तो माफी का वादा और यदि ऐसा नहीं होता है तो अभियोजन की धमकी दी जाती है। (देखें: वुड्रोफ्स एविडेंस, 9 वां संस्करण, पृष्ठ 284।) एक वादा हमेशा स्वीकारोक्ति विकल्प से जुड़ा होता है जबकि एक खतरा हमेशा मौन विकल्प से जुड़ा होता है; इस प्रकार, एक मामले में कैदी वादे के शुद्ध लाभ को माप रहा है, वर्तमान असंतोषजनक स्थिति के मुकाबले, झूठी स्वीकारोक्ति की सामान्य अवांछनीयता को घटाकर; जबकि दूसरे मामले में वह वर्तमान संतोषजनक स्थिति के शुद्ध लाभों को माप रहा है, खतरे की हानि के विरुद्ध स्वीकारोक्ति की सामान्य अवांछनीयता को घटाकर। यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि प्रत्येक प्रलोभन, धमकी या वादा किसी स्वीकारोक्ति को ख़राब नहीं करता है। चूँकि नियम का उद्देश्य केवल उन स्वीकारोक्ति को बाहर करना है जो प्रशंसापत्र रूप से अविश्वसनीय हैं, प्रलोभन, धमकी या वादा ऐसा होना चाहिए जो असत्य स्वीकारोक्ति की ओर ले जाए। उपरोक्त विश्लेषण पर न्यायालय को किसी प्रलोभन, वादे आदि की अनुपस्थिति या उपस्थिति या उसकी पर्याप्तता का निर्धारण करना है और इसने अभियुक्त के दिमाग पर कैसे या किस मात्रा में काम किया है। यदि न्यायालय की राय में प्रलोभन, वादा या धमकी पर्याप्त है, तो आरोपी व्यक्ति को ऐसे आधार देने के लिए जो उसे यह मानने के लिए उचित लगे कि ऐसा करने से उसे कोई लाभ मिलेगा या

किसी बुराई से बचा जा सकेगा, तो यह उसे बाहर करने के लिए पर्याप्त है स्वीकारोक्ति। धारा के अंतिम भाग में "उसे दिखाई देना" शब्द अभियुक्त की मानसिकता को दर्शाते हैं।

18. एक अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति, यदि स्वैच्छिक और सच्ची हो और मानसिक स्थिति में सही हो, तो न्यायालय उस पर भरोसा कर सकती है। किसी भी अन्य तथ्य की तरह इस स्वीकारोक्ति को भी साबित करना होगा। स्वीकारोक्ति के साक्ष्य का मूल्य, किसी भी अन्य साक्ष्य की तरह, उस गवाह की सत्यता पर निर्भर करता है जिससे यह किया गया है। स्वीकारोक्ति के संबंध में साक्ष्य का मूल्य साक्ष्य देने वाले गवाह की विश्वसनीयता पर निर्भर करता है। किसी भी न्यायालय के लिए यह धारणा शुरू करना संभव नहीं है कि न्यायेतर स्वीकारोक्ति एक कमजोर प्रकार का साक्ष्य है। यह परिस्थितियों की प्रकृति, कबूलनामे के समय और ऐसे बयान देने वाले गवाहों की विश्वसनीयता पर निर्भर करेगा। इस तरह की स्वीकारोक्ति पर भरोसा किया जा सकता है और उस पर दोषसिद्धि की स्थापना की जा सकती है यदि स्वीकारोक्ति के बारे में साक्ष्य उन गवाहों के मुंह से आता है जो निष्पक्ष प्रतीत होते हैं, अभियुक्त के लिए दूर-दूर तक भी शत्रुतापूर्ण नहीं हैं, और जिनके संबंध में कुछ भी सामने नहीं लाया गया है जो हो सकता है यह इंगित करने के लिए जाता है कि उसके पास आरोपी पर असत्य बयान देने का मकसद हो सकता है, गवाह द्वारा बोले

गए शब्द स्पष्ट, स्पष्ट और स्पष्ट रूप से बताते हैं कि आरोपी अपराध का अपराधी है और गवाह द्वारा कुछ भी नहीं छोड़ा गया है जो हो सकता है इसके विरुद्ध संघर्ष करो. गवाह के साक्ष्य को विश्वसनीयता की कसौटी पर कठोर परीक्षण के बाद, न्यायेतर स्वीकारोक्ति को स्वीकार किया जा सकता है और यदि यह विश्वसनीयता की कसौटी पर खरा उतरता है तो यह दोषसिद्धि का आधार बन सकता है। (देखें राजस्थान राज्य बनाम राजा राम (2003 (8) एससीसी 180)।

19. यदि तथ्यात्मक परिदृश्य पर विचार किया जाए तो यह देखा जाता है कि अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त के अपराध को स्पष्ट रूप से स्थापित किया है। जैसा कि उच्च न्यायालय ने पुष्टि की है, ट्रायल न्यायालय के फैसले में कोई खामी नहीं है। इसलिए हम निर्देश देते हैं कि अपील निराधार है और खारिज करने योग्य है।

डी.जी. अपील खारिज की गई।

यह अनुवाद आर्टिफ़िश्यल इंटेलिजेंस टूल "सुवास" की सहायता से न्यायिक अधिकारी अनीता चौधरी-प्रथम (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

**अस्वीकरण** :- इस निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।

*****